

ज्ञान बाबू जैसे लोग बड़े शहरों में होते ही नहीं !



मेरा सौभाग्य है कि कुछ दिन मुझे भी ज्ञान बाबू के साथ रहने, घूमने और रिपोर्टिंग करने का सौभाग्य मिला है। तब के दिनों मैं विद्यार्थी भी था और पत्रकारिता का ककहरा भी सीख रहा था। ज्ञान बाबू यानी ज्ञान प्रकाश राय के जैसा विनम्र और कम बोलने वाला पत्रकार मैं ने आज तक नहीं देखा तो अब क्या देखूंगा भला। वीर बहादुर सिंह जैसे लोग मुख्य मंत्री रहते हुए भी उन के पैर छूते नहीं अघाते थे। लेकिन तब भी हरदम अभाव में जीने वाले, ज्ञान बाबू के चेहरे पर ज़रा भी गुमान नहीं देखा मैं ने। तमाम बातें तो वह बिन बोले ही कह देते थे और लोग मान जाते थे वह बात। गोरखपुर की पत्रकारिता में गांधी जैसा मान था उन का। व्यवहार में भी वह गांधी जैसी सादगी बरतते थे। सचमुच जैसा उन का नाम था ज्ञान प्रकाश राय तो अपने नाम के अनुरूप वह ज्ञान का प्रकाश बांटने में भी अव्वल थे। उन दिनों गोरखपुर में हरदम खादी का कुर्ता धोती पहनने वाले मोटा सा चश्मा लगाए ज्ञान बाबू तब के पत्रकारों के लिए आदर्श थे, हमारे लिए तो आज भी हैं। हरदम पैदल ही घूमने वाले ज्ञान बाबू को कई बार साइकिल पर बिठा कर उन के गंतव्य तक ले जाने का भी सौभाग्य मुझे बार-बार मिला है। उन अतिशय सरल, सहज और विनम्र ज्ञान बाबू को शत-शत प्रणाम !

आज की ही तरह पत्रकारिता में तब के दिनों भी दलालों की फ़ौज तो नहीं पर हर शहर में दलालों की एक छोटी सी टुकड़ी तो होती ही थी। पर दलाल पत्रकारों की यह टुकड़ी ज्ञान बाबू से सायास दूरी बना कर रहती थी। ज्ञान बाबू को यह लोग फूटी आंख भी नहीं सुहाते थे। कोई किसी कालेज का मैनेजर था, हथियारों का दुकानदार था, कोई यूनिवर्सिटी में, कोई कहीं अध्यापक तो कोई किसी बैंक में। पत्रकारिता का बस चोला था। काम कुछ और था। पर ज्ञान बाबू श्रमजीवी पत्रकार थे। पत्रकारिता के सिवाय कोई और काम नहीं। कई बार तो उन के पास रिक्शे के लिए भी पैसा नहीं होता। पान के लिए, चाय के लिए, राशन के लिए या और ज़रूरतों के लिए तो दुकानदारों के यहां उन का खाता होता था। देर-सवेर भुगतान कर दिया करते थे। पर रिक्शे पर चलने के लिए तो खाता नहीं खुल सकता था। रिक्शे वाले भी, रिक्शा चलाने की मजूरी करते थे। किसी का खाता तो खोल नहीं सकते थे। ज्यादा से ज्यादा अगर एक रुपया लेना हो तो बारह आना ले सकते थे। बारह आना की जगह दस आना या दस आना की जगह आठ आना कर सकते थे। जामिन अली तब के दिनों रिक्शा वालों की यूनियन के नेता थे और नारा लगाते थे, कमाने वाला खाएगा !

उन दिनों प्रेस कांफ्रेंस अकसर दो जगहों पर होती थी। रेलवे स्टेशन के सामने बने सिचाई विभाग के डाक बंगले पर या सिविल लाइंस के पी डब्ल्यू डी के डाक बंगले पर। आज अखबार का दफ़्तर तब के दिनों बख़्शीपुर में हुआ करता था। बख़्शीपुर से दोनों ही दूर थे। इधर से पैदल जाने में कोई हर्ज नहीं था। पर उधर से वापसी में जल्दी होती थी, ख़बर लिखने की। वैसे भी उन दिनों दैनिक जागरण गोरखपुर से प्रकाशित होने लगा था। और आज अभी भी बनारस से छप कर आता था। तो ख़बर जल्दी भेजने का प्रेसर भी होता था। तो हमारे जैसे नवधा और उत्साही पत्रकार उन के काम आ जाते। जो तेज-तेज पैदल मारते, उन्हें बख़्शीपुर पहुंचा देते। शाम को आफिस छूटने से सड़क पर भीड़ भी होती थी। ट्रैफिक जाम जैसा तो नहीं था तब गोरखपुर में लेकिन सड़क खुली-खुली भी नहीं रहती। आकाश की तरह साफ़

शफ्फाक तो नहीं ही। पक्षी भी जब राह में तार आ जाए , वृक्ष आ जाए तो खुल कर उड़ नहीं सकते। फिर इधर तो साइकिल थी। और साइकिल के डंडे पर ज्ञान बाबू। जाने क्यों वह साइकिल के कैरियर पर बैठने की जगह , धोती उठा कर साइकिल के डंडे पर आगे बैठना पसंद करते थे। रास्ते में वह प्रेस कांफ्रेंस में हुई बातों पर भी बतियाते चलते। शायद इस लिए कि आगे बैठ कर बतियाने में बहुत सुविधा रहती थी। कैरियर यह सुविधा छीन लेता था। बतियाने में भोजपुरी ही हमारी भाषा होती थी।

कभी कभार किसी शाम जब मूड में वह होते तो घोष कंपनी चौराहे की एक बंगाली की मिठाई की दुकान पर ले कर आते। उस की चमचम तब के दिनों पचीस कि तीस पैसे में एक आती थी। चाय भी तब के दिनों चार आने की होती थी। चाय मैं तब भी नहीं पीता था। तो ज्ञान बाबू यह एक चमचम खिलाते थे। खुद भी खाते थे। फिर एक पान खाते थे और बख्शीपुर की ओर चल देते थे। साइकिल के डंडे पर बैठ कर। पर घोष कंपनी चौराहे पर चमचम खाने के अवसर बहुत कम मिलते थे। ज्यादातर तो उन की बातों का चमचम और उस की मिठास हमारे हिस्से होती। कभी-कभार कहीं जाते हुए अगर टाइम होता तो वह साइकिल पर नहीं बैठते थे। पैदल ही चलने लगते। साइकिल लिए हुए हम भी पैदल चलने लगते। खास कर जुबिली इंटर कालेज के सामने की सड़क पैदल चलने के लिए उन्हें मुफ़्रीद जान पड़ती। धीरे-धीरे बतियाते हुए , धीरे-धीरे ही चलते रहते। कभी उन को तेज़ बोलते मैं ने नहीं सुना। ज्ञान बाबू पिता की उम्र के थे पर व्यवहार उन का दोस्ताना ही रहता। हंसी-मजाक भी जारी रखते। जेनरेशन गैप नहीं आने देते थे।

एक बार तत्कालीन मुख्य मंत्री बाबू बनारसीदास की प्रेस कांफ्रेंस थी। सिचाई विभाग के डाक बंगले में। बाबू बनारसीदास भी धीमे ही बोलते थे। उन की आवाज़ जैसे बैठी हुई रहती थी। घायं-घायं वाली आवाज़ थी उन की। वह जाने क्यों जल्दी में भी थे। अकसर अब भी देखता हूं तमाम सरकारी ओहदेदार ज़िले के पत्रकारों को बहुत गंभीरता से नहीं लेते। अखिलेश यादव जैसे लोग तो अब अपने सामने ही छोटे ज़िले के पत्रकारों को पिटवा देते हैं। फिर बनारसीदास विधानसभा अध्यक्ष भी रह चुके थे। अपनी उस घायं-घायं वाली आवाज़ में विधान सभा संभालते रहे थे। और सुनते हैं कि बहुत अच्छी तरह संभालते रहे थे। उन की एक अंगुली के इशारे से विधायक , मंत्री बैठ जाते थे। फिर यहां तो पत्रकार थे। वह भी छोटे से ज़िले गोरखपुर के पत्रकार। अब सवाल और जवाब तो स्पष्ट याद नहीं है पर ज्ञान बाबू एक सवाल पर अड़ गए तो अड़ गए। जैसे बनारसीदास धीरे बोलने वाले , वैसे ज्ञान बाबू भी धीरे बोलने वाले। गो कि बनारसीदास माइक पर बोल रहे थे पर जब बनारसीदास सवाल टालने पर आमादा हुए तो ज्ञान बाबू अपनी धीमी आवाज़ में थोड़ा तल्लख हुए। बनारसीदास को जवाब देना पड़ा था।

ज्ञान बाबू जब कभी हमारी साइकिल पर बैठते तो लगता जैसे हम कोई विशेष हैं। 18 -19 बरस की उम्र थी। किसी अखबार में कोई नौकरी नहीं थी। विद्यार्थी जीवन था। कविताएं लिखता था। लगातार लिखता था। लेकिन अखबारों में परिचर्चा लिखता था। फीचर लिखता था। वह भी जब-तब किसी साप्ताहिक अखबार यथा उत्तरी हेराल्ड , जनस्वर , पर्यवेक्षक या कभी-कभार दैनिक जागरण में छपता रहता था। नाटकों की समीक्षा भी लिखता था। वह भी छपता था। आज में यह सब कुछ नहीं छपता था। बनारस से कभी-कभार आज अखबार के साप्ताहिक परिशिष्ट में कविता या गीत छप जाता था। लेकिन उस में ज्ञान बाबू का कोई सहयोग नहीं रहता था। हां , कवि गोष्ठी की रिपोर्ट छापने में ज़रूर ज्ञान बाबू मदद करते थे। सभी कवियों का नाम भेज देते थे , काटते नहीं थे कोई नाम। जब कि दैनिक

जागरण में अकसर हमारे जैसे लोगों के नाम कभी-कभार कट जाते थे। उन दिनों हम कुछ लोगों ने मिल कर जागृति नाम की एक साहित्यिक संस्था बनाई थी और हर महीने एक कवि गोष्ठी आयोजित करते थे। उस की रिपोर्ट कभी-कभार ज्ञान बाबू स्नेहवश हमारी कविता के शीर्षक से भी छाप देते। डाक्टर शिवरत्नलाल के घर भी हर महीने एक कवि गोष्ठी होती। उस में विश्वविद्यालय के कुछ प्राध्यापकों के साथ जब हमारा भी नाम ज्ञान बाबू की कृपा से छपा दिखता तो सुख से भर जाता था। आज अखबार में एक मुश्किल और थी। कई बार कार्यक्रम रद्द हो जाने पर भी संबंधित रिपोर्ट छप जाती थी। जैसे रेल विभाग के नाटकों की। नाटक मंचन के एक-दो दिन पहले ही रिपोर्ट और फोटो बनारस भेज दी जाती थी। रेल विभाग वैसे भी अखबारों का बड़ा विज्ञापनदाता था उन दिनों। तो बाखुशी रिपोर्ट छपती थी, कमोवेश सभी अखबारों में। पर अचानक कोई राष्ट्रीय शोक या किसी अन्य कारण से नाटक का मंचन रद्द हो जाता था। फिर भी आज अखबार में वह रिपोर्ट मय फोटो के छप जाती थी। यह गड़बड़ बनारस एडवांस में भेज देने के कारण होती थी।

हम उन दिनों भले किसी अखबार की नौकरी में नहीं थे पर हर घटना, हर प्रेस कांफ्रेंस में तब उपस्थित रहते। बेगानी शादी में अब्दुल्ला दीवाना बन कर। कभी कोई टोकता-रोकता भी नहीं था। प्रेस कांफ्रेंसों में सवाल भी पूछते रहते थे हम। तब भी नहीं। बाबू बनारसीदास वाली प्रेस कांफ्रेंस में मैं ने भी कोई सवाल पूछा था, अच्छी तरह याद है। एक सामाजवादी नेता थे उग्रसेन सिंह। उन दिनों सांसद थे। वह अकसर प्रेस कांफ्रेंस करते थे। जाने मुझे उत्साहित करने के लिए या समाजवादी होने के कारण मेरे सवाल बहुत ध्यान से सुनते थे। ज्ञान बाबू की बहुत इज्जत करते थे उग्रसेन सिंह।

जल्दी ही मैं राष्ट्रीय पत्रिकाओं में छपने लगा। रविवार, दिनमान, सारिका, धर्मयुग, साप्ताहिक हिंदुस्तान में भी मेरे लेख, कविताएं, रिपोर्ट, फीचर छपने लगे। रविवार में तो तब के समय मेरी रिपोर्ट विशेष रिपोर्ट बन कर छपने लगी थी। सारिका में प्रेमचंद पर एक फीचर पढ़ कर पूर्वी संदेश के मोहम्मद ज़की इतने खुश हुए कि मुझे अपने दफ्तर ले जा कर सीधे पूर्वी संदेश का संपादक बना दिया। प्रिंट लाइन पर मेरा नाम बतौर संपादक छापने लगे थे। यह दिसंबर, 1978 की बात है। बी ए में पढ़ रहा था। एक दिन सिविल हॉस्पिटल के पास हेड पोस्ट आफिस अपनी डाक देखने गया था। अकसर रचनाओं की स्वीकृति, अस्वीकृति या मनी आर्डर आदि का शाम तक इंतज़ार करने के बजाय सीधे पोस्ट आफिस पहुंच जाता था। छपी हुई रचनाएं भी मिल जातीं। तो इसी पोस्ट आफिस पर ज़की साहब मिले। मुझ से पूछा, दयानंद पांडेय हो ? सारिका में तुम्हारी फोटो छपी है। मैं ने हामी भरी तो बोले, मुझे जानते हो ? मैं ने बहुत अदब से नहीं मैं सिर हिलाया। वह बोले, पूर्वी संदेश जानते हो ? मैं ने हामी भरी। फिर वह बोले, मुझे ज़की कहते हैं, मोहम्मद ज़की ! मैं ने हाथ जोड़ कर नमस्कार किया। ज़की साहब ने कहा, हमारे साथ काम करोगे ? मैं ने कहा, अभी बी ए में पढ़ रहा हूं। उन्होंने ने कहा कोई बात नहीं। अपने साथ ज़की साहब ने रिक्शे पर बैठाया और दफ्तर में ले जा कर एक कुर्सी पर बैठाया। सारे स्टाफ को बुला कर परिचय करवाया। कहा कि आज से पूर्वी संदेश के यह संपादक हैं। ज़की साहब ने क्लास के बाद ही अखबार के दफ्तर आने की छूट दे रखी थी। कहा था, बरखुरदार, हम ने पढ़ते समय बीड़ी भी बनाई है। आप को तो फिर भी अखबार में काम करने को मिला है। ज्ञान बाबू ने मारे खुशी के तब मुझे एक नहीं, दो चमचम खिलाए थे। मुझे अखबार निकालने का कोई तजुर्बा नहीं था। शऊर भी नहीं था। पर ज़की साहब ने हफ्ते-दस दिन में सब सिखा दिया। दो-तीन महीने वह गाइड करते रहे पर फिर सारा अखबार

मेरे ऊपर छोड़ दिया। कहा कि जो लिखना जानता है, वह अखबार भी अच्छा निकाल सकता है।

ज्ञान बाबू एक रेल दुर्घटना में अपनी तीन अंगुलियां गंवाने के बाद अब सक्रिय पत्रकारिता से रिटायर हो गए थे। ट्रेन में चढ़ते समय फिसल कर पटरियों पर गिर गए थे। गनीमत थी अंगुलियां ही गईं, जान बच गई। दिल्ली के अस्पताल में महीनों इलाज के बाद ठीक हुए। बनारस से एक उपाध्याय जी आ गए थे आज में। ज्ञान बाबू मोटा खट्टर का कुरता जाकेट और मोटे शीशे वाला चश्मा पहनते थे। उपाध्याय जी सिल्क का कुरता पहनते थे। कविता वगैरह में उन की कोई दिलचस्पी नहीं थी। हमारी कवि गोष्ठी की खबरें अब आज में नहीं छपती थीं। दैनिक जागरण भले गोरखपुर से छपने लगा था। ज्यादा बिकता भी था। पर गोरखपुर के पुराने लोगों के घरों में अब भी आज पसंदीदा अखबार था। उन की आदत में था आज। और तब के लोग अखबार की एक-एक लाइन पढ़ते थे। लोग पढ़ते थे और बताते थे कि तुम्हारा नाम छपा है, आज अखबार में। तो सीना चौड़ा हो जाता था। जल्दी ही उपाध्याय जी भी वापस बनारस चले गए।

बनारस से सुधांशु उपाध्याय आ गए। सुधांशु उपाध्याय खुद भी कवि थे। गीतों में उन का नाम था। कवि गोष्ठियों की खबरें फिर छपने लगीं। पर ज्ञान जी वाला वह स्नेह या मेरी कविताओं पर गोष्ठी की रिपोर्ट का शीर्षक सपना हो गया। सुधांशु उपाध्याय अब गोरखपुर की कवि गोष्ठियों में वी आई पी हो चले थे। इधर अब मेरा कवि पीछे हो रहा था, पत्रकार वाली रोजी-रोटी कूद कर आगे आ रही थी। उधर आज अखबार से सुधांशु उपाध्याय भी जल्दी ही विदा हो गए। अमृत प्रभात, इलाहाबाद चले गए। पुराने वाले उपाध्याय जी फिर आए कुछ दिनों के लिए। बीच में कौस्तुभानंद पांडेय भी। जिन के भाई कहीं सूचनाधिकारी थे। फिर आए गिरिजेश राय। गिरिजेश राय अंगद की तरह पांव जमा कर आज, गोरखपुर में उपस्थित हो गए। और यह लीजिए, आज अखबार अब गोरखपुर से छपने लगा। बैंक रोड, गोलघर की लाहिड़ी बिल्डिंग से। अखबार की लांचिंग में बनारस से मशहूर गीतकार और अग्रज बुद्धिनाथ मिश्र भी आए। आज अब वैसे ही बदल गया जैसे बरखीपुर से टहलता हुआ कोई गोलघर आ जाए। हम पूर्वी संदेश से जनस्वर चले गए थे। क्यों कि पूर्वी संदेश में डेढ़ सौ रुपए मिल रहे थे। जनस्वर के सरदार देवेंद्र सिंह ने एक दिन पूछा, पूर्वी संदेश में कितना पैसा मिलता है? मैं ने बताया कि डेढ़ सौ रुपया। देवेंद्र सिंह ने कहा, जनस्वर आ जाइए, दो सौ रुपए मिलेंगे। जनस्वर चला गया। कुछ समय बाद जकी साहब एक कार्यक्रम में मिले। पूछा, कहां हैं बरखुरदार! बताया जनस्वर में। जकी साहब ने पूछा, पूर्वी संदेश में क्या दिक्कत थी? उन्हें बताया कि वहां दो सौ रुपए मिल रहे हैं। जकी साहब ने मेरी पीठ पर धौल मारी और कहा, नालायक पूर्वी संदेश में अब ढाई सौ रुपए मिलेंगे। कल से आ जाओ! मैं वापस पूर्वी संदेश आ गया। फिर जकी साहब से बहुत कुछ सीखने को मिला। बगल में बिस्मिल के श्यामानंद जी थे। उन से भी दोस्ती हुई। उन से भी सीखता रहा।

एक बार हमारे चचेरे भाई दिल्ली जा रहे थे बैंक का कोई इम्तहान देने। उन के पास रेलवे का फर्स्ट क्लास का पास था। हम भी चले गए उन के साथ दिल्ली घूमने। वह इम्तहान की तैयारियों में लग गए। मैं अखबारों, पत्रिकाओं के दफ्तर घूमने लगा। सर्वोत्तम रीडर्स डाइजेस्ट के संपादक अरविंद कुमार से महज मिलने गया था। लेकिन दस मिनट की बातचीत में उन्होंने ने सर्वोत्तम रीडर्स डाइजेस्ट में नौकरी का प्रस्ताव दे दिया। दूसरे ही दिन से मैं सर्वोत्तम रीडर्स डाइजेस्ट की नौकरी में आ गया।

यह मई , 1981 की बात है। पर यहां दिल्ली में ज्ञान बाबू नहीं थे कि सर्वोत्तम की नौकरी की खुशी में चमचम खिलाएं। तब जब कि यहां दिल्ली में घोष कंपनी के बंगाली की दुकान की जगह पूरा का पूरा बंगाली मार्केट था , मिठाइयों का। पर कहा न यहां ज्ञान बाबू नहीं थे। कुछ समय बाद मैं सर्वोत्तम रीडर्स डाइजेस्ट छोड़ कर जनसत्ता चला गया। यह अगस्त , 1983 की बात है। ज्ञान बाबू फिर नहीं थे चमचम खिलाने के लिए। असल में ज्ञान बाबू जैसे लोग दिल्ली जैसे बड़े शहरों में रहते भी नहीं। ज्ञान बाबू जैसे लोग गोरखपुर जैसे छोटे शहरों में ही होते हैं। छोटी-छोटी खुशियों को बड़ी-बड़ी खुशियों में तब्दील करने के लिए। अपनी मिठास में आप के सपनों को और मीठा और खुशनुमा बना देने के लिए। अपने पतले-पतले , पान से रंगे होठों , गुलज़ार की तरह सर्वदा हल्की दाढ़ी में मुस्कुराते हुए , मिठास की धौल में दोनों हाथ जाकेट में डाले हुए ऐसे देखते हैं जैसे अमावस की रात को चीर कर पूर्णमासी का चांद उगा देंगे। आप के मन में , आप की ज़िंदगी में पूर्णमासी की चांदनी बिखेरते हुए चमचम की मिठास घोल देते हैं। मिठास तो गुड़ की एक डली में भी होती है। चीनी के चार दाने में भी होती है। पर गोरखपुर में घोष कंपनी में रेती की तरफ मुड़ते हुई सड़क पर बंगाली की मिठाई की दुकान से ज्ञान बाबू द्वारा खरीद कर खिलाए गए , चार आने के चमचम की चकमक चाशनी में मिठास की जो सांद्रता होती है , उसे खाने और उस के स्वाद का जो आस्वाद होता है वह या ज्ञान बाबू जानते हैं या मैं जानता हूं। तीसरा कोई नहीं। वह दुकानदार भी नहीं। इसे आप भावनाओं की आर्द्रता में भी बांच सकते हैं और गोरखपुर की गर्वीली गरीबी में भी।

फ़रवरी , 1985 में दिल्ली से लखनऊ , स्वतंत्र भारत आया। पहली फ़रवरी को आया था। स्वतंत्र भारत आना किसी को नहीं मालूम था। पत्नी को भी नहीं। किसी को बताया ही नहीं था। पर जब दिन ग्यारह बजे 20 , विधान सभा मार्ग के स्वतंत्र भारत दफ़्तर पहुंचा तो वहां जय प्रकाश शाही बाहें फैलाए स्वागत के लिए खड़े थे। बाहों में भरते हुए वह बधाई और स्वागत के शब्द बुदबुदाने लगे। पूछा , उन से कि कइसे पता चलल ? शाही जी धीरे से बोले , धड़कन से ! दिल की धड़कन से। लगा जैसे ज्ञान बाबू कहीं शाही जी के पीछे खड़े मुस्कुरा रहे हैं। दोनों हाथ जाकेट में डाले। पान से भरे मुंह से मंद-मंद मुस्कुराते हुए। शाही जी तब के समय जनसत्ता के व्यूरो चीफ़ थे , लखनऊ में। और मैं जनसत्ता , दिल्ली से आया था , स्वतंत्र भारत। स्वतंत्र भारत उन दिनों लखनऊ का सर्वाधिक प्रसार वाला अख़बार था। सवा लाख रोज़ छपता था तब। वैसे भी शाही जी ही पत्रकारिता में खींच कर मुझे ले आए। सत्तर के दशक के उत्तरार्ध में। एक बार किसी अख़बार में मेरी एक कविता छपी थी। उसे दिखाते हुए शाही जी बोले , अभी आप कविता लिख रहे हैं , तो बित्ता से नापते हुए बोले , इतनी जगह मिल रही है। अगर लेख लिखेंगे , रिपोर्ट लिखेंगे तो , कई बित्ता बढ़ाते हुए बोले , तब इतनी जगह मिलगी ! बात मेरी समझ में आ गई थी। शाही जी उन दिनों उत्तरी हेराल्ड में संपादक थे। हर हफ्ते मेरे लेख छापते थे तब। फिर धीरे-धीरे लिखने का विस्तार होता गया।

संयोग ही था कि गोरखपुर के वीरबहादुर सिंह उत्तर प्रदेश के मुख्य मंत्री बन गए 1986 में। 1987 में गोरखपुर में उत्तर प्रदेश जर्नलिस्ट एसोशिएशन की कांफ़्रेंस थी। गोरखपुर के रेलवे स्टेडियम में आयोजित इस कांफ़्रेंस में अरसे बाद ज्ञान बाबू से भेंट हुई। अस्वस्थ और अनमने लग रहे थे। पर मंच पर मुख्य मंत्री के साथ उन्हें बिठाया गया था। इस अवसर पर ज्ञान बाबू को सम्मानित भी किया मुख्य मंत्री वीरबहादुर सिंह ने। सम्मानित करते हुए वीरबहादुर सिंह ने झुक कर बड़ी श्रद्धा से ज्ञान बाबू के दोनों पैर

छुए। वह जो कहते हैं न कि न्याय हो और होता हुआ दिखाई भी दे। तो उसी तर्ज पर जो कहें कि सम्मान हो और होता हुआ दिखाई भी दे। तो यही हुआ। ज्ञान बाबू को इस तरह सम्मानित होते देख कर मेरे मन में हजारों चमचम एक साथ घूम गए। ज्ञान बाबू से यही मेरी अंतिम भेंट थी। वह भीड़ से घिरे थे। सो ज्यादा बात नहीं हो सकी। पर मैं ने पाया कि अब उन के मन में कोई अभिलाषा शेष नहीं रह गई थी। मुंह में पान भरे खादी के जाकेट में नीचे दो बटन बंद , ऊपर दो बटन बंद में के आगे के पॉकेट में दोनों हाथ डाले खड़े मंद-मंद मुस्काते ज्ञान बाबू आज भी स्मृतियों में खड़े मिलते हैं। ऐसे जैसे आज भी बख्शीपुर में आज अखबार के दफ्तर में टेलीप्रिंटर की खिचखिच से ऊब कर टैरेस पर खड़े हो कर धूप सेंकते हुए कभी सामने जार्ज इस्लामिया कालेज का मैदान देख रहे हों , कभी नीचे सड़क पर लोगों को आते-जाते देख रहे हों। ज्ञान बाबू का यह देखना आज भी भूलता नहीं हूं। ऐसे जैसे टेलीप्रिंटर पर बनारस से आया कोई संदेश देख रहे हों या अपनी ही भेजी कोई खबर। उन का यह देखना मन में कहीं निरंतर आवाजाही किए रहता है। भरे शोर में भी खामोश आवाजाही।

साभार- <https://sarokarnama.blogspot.com/> से